Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4/ November- December 2025 / VOL-02 ISSUE-III

33

अवधी लोक धुनों में भारतीय समाज और संस्कृति

डॉ. राधा देवी,
आगरा, उत्तर प्रदेश

डॉ. पन्नन वाजपेई,
आगरा, उत्तर प्रदेश

भारतीय समाज में संस्कृति सर्वोपरि है, यह एक सामाजिक विरासत है समाज द्वारा मानव को दिया जाने वाला उपहार है। मानव समाज की एक अमूल्य निधि है। यदि इस प्रश्न पर विचार किया जाए कि विश्व की सबसे प्राचीनतम और अमर संस्कृति कौन सी है, तो निस्सन्देह वह भारतीय संस्कृति ही है, जो अपनी समस्त आभा और प्रतिभा के साथ चिरकाल से स्थायी है। विश्व की अन्य संस्कृतियों की तरह इसे मिटाने और प्रभावित करने के बहुसंख्यक प्रयत्न किए गये पर भारतीय संस्कृति कोई सामान्य संस्कृति नहीं है। इसने अपने सुदीर्घ इतिहास में भारत के निवासियों ने एक ऐसी समाज व्यवस्था एवं संस्कृति का विकास किया, जो अपने आप में मौलिक, अनूठी, अनुपमेय, शाश्वत एवं विश्व की अन्य संस्कृतियों से भिन्न है। इस देश के ऋषि–मुनि, महापुरूष, गुरूजन, तीर्थस्थान, धर्म एवं दर्शन तथा सामाजिक संस्थाएँ, भारतीय समाज एवं संस्कृति के सजग प्रहरी रहे हैं। सहिष्णुता एवं समन्वय सिद्धान्त तथा संस्कार एवं सर्वहित भारतीय संस्कृति के मूलाधार हैं। अवध का समाज एक सांस्कारिक एवं परम्परा प्रधान समाज है। अतः भारतीय संस्कृति की महक लोककंठ से इस प्रकार फैली कि अवध का ही नहीं सम्पूर्ण भारत का आँचल सुगन्धित हो गया। अवधी लोकगीतों ने भारतीय संस्कृति के मूलाधारों को अपने में इस प्रकार समाहित कर लिया है कि यदि यह कहा जाए कि गीत है और संस्कृति उनमें अनुप्राणित आत्मा तो अतिशयोक्ति न होगी। अतः अवधी लोक गीतों में भारतीय संस्कृति अपने मूल में समायी हुई है।

मानव जीवन के संस्कारों को संस्कृति कहते हैं। सामाजिक प्राणी होने के नाते, मानव के सामाजिक जीवन से इसका गहरा सम्बन्ध है। संस्कृति मानव की सर्वाधिक महत्वपूर्ण सम्पत्ति है। इसी के बल पर मानव अपने जीवन को, नित्य परिमार्जित, विकसित एवं सुसज्जित करके सुख–समृद्धि का अनुभव करते हुए जीवन यापन करता आया है।

''संस्कृति वह जटिल समग्रता है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिक आधार, कानून प्रभा और ऐसी ही अन्य क्षमताओं का समावेश होता है जिसे मानव समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।''[1]

अतः मानव द्वारा निर्मित प्रथाएं, रीति–रिवाज, कानून, धर्म, दर्शन, कला, ज्ञान विज्ञान आदि को संस्कृति कहते हैं। भारतीय संस्कृति अखिल विश्व की सबसे प्राचीनतम एवं श्रेष्ठतम संस्कृति है। क्योंकि इसके नियम कानून धर्म, प्रथाएं एवं ज्ञान–विज्ञान समस्त विश्व के प्राणिमात्र के कल्याणार्थ है। इसकी प्रशंसा में मनु कहते हैं –

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्यनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।[2]

अर्थात् इस देश में उत्पन्न होकर अनेक महापुरूषों ने अपने–अपने चरित्र द्वारा समस्त पृथ्वी के मनुष्यों को शिक्षा दी भारतीय संस्कृति महान संस्कृति है। इस संस्कृति में समस्त विश्व के कल्याण की मंगल कामना है। इसके हित के लिए प्रार्थना है, ऋषि कहता है –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु या कश्चिद दुःख भाग् भवेत्।।[3]

अर्थात सभी सुखी हो, सभी निरोगी हो, सभी समान कल्याण को प्राप्त करें, किसी को भी अणुमात्र दुख न हो।

इस प्रकार हम पाते है कि भारतीय संस्कृति की अपनी कुछ मौलिक विशेषताएँ हैं उन्हीं के कारण आज यह जीवित है और सम्पूर्ण विश्व में इसे आदर की दृष्टि से देखा जाता है। सहिष्णुता एवं समन्वय की प्रवृत्ति ने विदेशी संघर्ष से देश को बचाया तथा धर्म की प्रधानता और कर्म सिद्धान्त ने भारतीयों को जनहित में कार्य करने की प्रेरणा प्रदान की तथा उन्हें बुराइयों से दूर करके नैतिक उत्थान पर बल दिया। भारतीय संस्कृति की ये विशिष्टताएँ वेदों, शास्त्रों या महापुरूषों की वाणी तक ही नहीं रहीं बल्कि अवधी समाज में लोककंठ की तान बनकर भारतवर्ष के कण–कण में गूँज उठी, हमारे पूर्वजों ने अवधी समाज को सुदृढ़ एवं सुखी समृद्धशाली बनाने के लिए सामाजिक विधान को जन–जन की वाणी में प्रस्तुत कर दिया और दादी, नानी, ताई आदि के मधुर कण्ठों से सामाजिक विधानों, संस्कारों, रीतियों की ऐसी मधुर मनभावनी धारा बही जो देशकाल की सीमाओं को पार करके सतत् प्रवाहित है। जो गंगा, यमुना और सरयू की धारा बनकर जनमानस को पवित्र और संयमित जीवन के गोते लगवा रही है। अवधी लोक गीतों में भारतीय संस्कृति इस प्रकार समाहित है। जैसे शरीर में प्राण। अतः हम लोक गीतों में भारतीय संस्कृति की मौलिकता के दर्शन करेंगे।

E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4/ November- December 2025 / VOL-02 ISSUE-III

भारतीय संस्कृति में आध्यात्मवाद को विशेष महत्व दिया गया है। धर्म और आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति की आत्मा है। इसमें भोग और त्याग का सुन्दर समन्वय है। संसार में अनासक्ति के भाव से अपने कर्तव्य का पालन और जीवन में ईश्वर से अपने कर्तव्य का पालन और जीवन में ईश्वर की प्रभुता इस संस्कृति का अभिन्न अंग है, लोक कंठ भी इस संदेश को जन जन तक पहुँचाना चाहता है कि प्रत्येक प्राणी नैतिकता का पालन करे संसार के प्रत्येक प्राणी नैतिकता का पालन करें संसार के प्रत्येक वस्तु का त्याग भाव भोग करें –

राम राम मुख बोल रे, भाई छोड़ि चतुराई
जग चतुराई बहुत दुःख पइहौ, बार बार पछिताई।
राम नाम बहुतै सुख पइहौ, जिउ की जरनि नसाइ
अन्त समउ तुम्इरी बनि जइहै, सुख ते नयन मुदि जाई।।

सहिष्णुता और समन्वय भारतीय संस्कृति की एक महान विशेषता है जिसके कारण यह विश्व की सर्वोत्तम संस्कृति है। भारतीय संस्कृति वह महासागर है जिसमें समय–समय पर हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई, जैन, बौद्ध, शक, हूण, कुषाण आदि संस्कृतियाँ नाना रूपधारी सरिताओं की भांति अपना पृथक अस्तित्व समाप्त करके इसी में विलीन हो गयी। इस विशेषता को लोक जीवन में एवं साम्प्रदायिक कटुता को भुलाकर सभी के प्रति उदारता एवं प्रेम भाव प्रदर्शित किया, हिन्दू मुस्लिम को प्रदर्शित करता यह गीत कितना मनोरम है।

ईश्वर कहौ चाहे अल्ला, मति झगरनु हो भाई
राम रहयँ मन्दिर, औ महजिद माँ अल्ला
दूनौ का सीस झुकाई हो मति झगरनु हो भाई
ई संसार करय, जस करिहौ,
तइसन मिली फलु आई हो, मति झगरनु हो भाई

विवाह के शुभ अवसर पर जेवनार गीत हिन्दू संस्कृति की परम्परा है वहाँ भी समन्वय और सहिष्णुता के दर्शन होते हैं –

चलौ देरिव आई लखनऊ की बारादरी, चलौ देखि
बारादरी के बारह दरवाजे, दुलहे की बहिनी कइसे खड़ी
बारादरी के बारह दरवाजे, दुलहे की बुआ फिसिलि पड़ी।।[4]

भारतीय संस्कृति का आधार स्तम्भ है वर्णाश्रम–व्यवस्था। जीवन की सार्थकता बनाए रखने के लिए समाज को सही दिशा और सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार वर्णों में समाज बटा था। संसार के प्राचीनतम् ग्रन्थ ऋग्वेद में इसका परिचय मिलता है –

ब्राह्मणोऽस्य मुख यासीत्, बाहुराजन्यः कृतः।
उरु तदस्य पद वैश्यः पदभ्याम् शुद्रोअजायत।।[5]

परन्तु उस समय यह विभाजन जाति आधारित न होकर कार्य पर आधारित था तथा श्रम विभाजन हेतु यह व्यवस्था की गयी थी। समाज में इन चारों वर्णों की कार्य प्रणालियों, अधिकार कर्तव्यों का वर्णन लोक गीतों के रूप में प्राप्त होता है। पुत्र जन्म दक्षिणा पाने और मंगल कामना करने का वर्णन लोक कवि ने किया है –

दशरथ अंगना माई आज बधाई बाजै
राजा दशरथ घर राम भये हैं
अरे घेरि–घेरि आये बाम्हना
अरे बम्हना शुभ रासि गन्यो है
गउवा दिहेन नवलखा ना
अरे बम्हना आसीस दियो है
जुग जुग जियो लालना।।[6]

भारतीय संस्कृति में जाति व्यवस्था का प्रमुख स्थान है, इस व्यवस्था के आधार पर सम्पूर्ण समाज अनेक छोटे–छोटे उपभागों में विभाजित है। जाति की सदस्यता का आधार जन्म है। प्रत्येक जाति की समाज में एक विशिष्ट स्थिति होती है। विविधता में एकता की भावना भारतीय संस्कृति का प्राण तत्व है अतः ये सभी जातियाँ पृथक–पृथक होते हुए भी अनेक अवसरों पर एक होकर सहभागिता करती है। भारतीय संस्कृति में जाति व्यवस्था का सूचक यह लोक गीत सजीव चित्र प्रस्तुत करता है जहाँ नाई, बारी, मोची, माली, लोहार, बजाज, महरा, सोनार, धोबी सभी समाज व्यवस्था के आवश्यक अंग हैं –

एक बड़ा बन्ना नादान हो सुन्दर बनि आवा
मैं तुमसे पूछवं वानरे जाया कहँ पायो

©Copyright 2024 *ADRJ*. All Rights Reserved

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4/ November- December 2025 / VOL-02 ISSUE-III

तुमसे अम्मा का यारु हो वजना लइ आवा।।

लोक गीतों में न केवल जातियों के नामों का उल्लेख है बल्कि प्रत्येक जाति के सामान्यतः परम्परागत व्यवसायों का भी वर्णन है। जिसे इस बन्ना गीत में दर्शाया गया है –

बन्ना इत्ते दिन, क्वारे क्यों रहे
मालनी के गयेन, मलिया न मिला
मौरा बिनु क्वारे हम रहे,
बजजा के गयेन बजजा न मिला
फेंटा बिनु क्वांरे हम रहे
दर्जी के गयने दर्जी न मिला
जामा बिनु क्वांरे हम रहे
लोहरा के गयेन, लोहरा न मिला
कंकण बिनु क्वारे हम रहे
मोची के गयेन मोची न मिला
जूता बिनु क्वांरे हम रहे।।

संयुक्त परिवार प्रथा का प्रचलन भारत में आदिकाल से है, संयुक्त परिवार में तीन या चार पीढ़ी के लोग एक साथ निवास करते हैं, उनकी सम्पत्ति सामूहिक होती है तथा वे प्रत्येक शुभ–अशुभ कार्यों में एक साथ सहभागिता करते हैं। अवधी समाज में संयुक्त परिवार की प्रधानता है। इस समाज के लोक जीवन में होने वाला प्रत्येक कार्य बड़े बुजुर्गों से पूछकर उनके मार्गदर्शन में होता है। प्रत्येक अवसर पर दादा, दादी, ताऊ, ताई, चाचा, चाची की आवश्यकता पड़ती है और सभी के अपने–अपने उत्तदायित्व हैं, सुहाग गीत के माध्यम से संयुक्त परिवार व्यवस्था को समझा जा सकता है।

कहन, चलिउ बेटी कन्या कुवांरी
हम तौ चलेन अपने बाबा रामा पासा
अरे मांगना सोहाग अपनी दादी रानी फेरा
हम तौ चलेन अपने ताऊ रामा पासा
अरे मांगना सोहाग अपनी ताई रानी फेरा
हम तौ चलेन अपने चाला रामा पासा
मांगना सोहाग अपनी चाची रानी फेरा
हंसि के बाबा रामा बोले सुनु बेटी
अरे अउरे का देहउ बेटी थोरे का थोरा
अपनी लड़ैती का बैलु भराई,
बैलु न चलै बेटी छकरा लदाई।।

भारतीय संस्कृति व पारिवारिक जीवन में भी आदर्श प्रस्तुत किया गया है। जहाँ माता–पिता, सास–ससुर, जेठ–जेठानी, देवर, ननद, पति, पुत्र, भाई, बहन सभी सम्बन्धों में मृदुता एवं यथा योग्य सम्मान की बात कही गयी है। लोक गीतों पारिवारिक जीवन में इन आदर्शों को भी जन–जन तक पहुँचाया गया है, ताकि पारिवारिक जीवन में नैतिक नियमों और सिद्धान्तों की अनेदखी न हो, कोई कुल वधू अपने पारिवारिक जीवन में सुख और प्रसन्नता का संकेत देती हुई कहती है –

घर ही या मन्दिर बनइवै
मन्दिर हम का करै जइवै
अपने ससुर का बरभा बनइबै
सासु का सरस्वती बनइबै,
मन्दिर हम का करै जइबै
अपने जेठ का विशनू बनइर्ब
जेठानी का लक्षमी बनइबै
मन्दिर हम का करै जइबै
अपने देवर का शंकर बनइर्ब
देवरानी का गौरा बनइबै
मन्दिर हम का करै जइबै।।

©Copyright 2024 *ADRJ*. All Rights Reserved

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4/ November- December 2025 / VOL-02 ISSUE-III

प्राचीन साहित्य में कहा गया है कि 'मानव जीवनस्य संस्करण संस्कृति' अर्थात् मानव जीवन के संस्कार ही संस्कृति है। संस्कार का तात्पर्य शुद्धीकरण की प्रक्रिया से है। भारतीय संस्कृति में व्यक्ति को सामाजिक प्राणी बनाने, उसके व्यक्तित्व का विकास करने और उसकी नैसर्गिक प्रवृत्तियों को समाजोपयोगी बनाने के लिए तथा चल रही समाज व्यवस्था के निर्बाध गति देने के लिए प्रत्येक व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और नैतिक परिष्कार आवश्यक माना गया है। भारतीय संस्कृति में इसके लिए सोलह संस्कारों की व्यवस्था है, जिसमें नामकरण, अन्न प्राशन, मुंडन, उपनयन एवं विवाह संस्कार प्रमुख है। संस्कार प्रधान होने के कारण समाज के लोक कंठ में ये सभी संस्कार समाहित होकर सबको संस्कारों की महिमा बता रहे हैं। भारतीय संस्कारों को प्रस्तुत करता हुआ ढोलक पूजन गीत कितना अनुपम है –

ढोलक देई फेरि जन्दी आयौ
भये या आयौ और छट्ठी या आयौ
मढचटना आयौ और मुढ़ना या आयौ
ढोलक देई मोरे कन छेदने आयौ
जनेउ या आयौ, बियाहे आयौ
ढोलक देई मोरे नित उठि आयौ।।

भारतीय संस्कृति में जीवन को नैतिक पतन से बचाने के लिए पाँच प्रकार के ऋण माने गये हैं, ये हैं – देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण, मातृ ऋण, अतिथि ऋण। व्यक्ति जो कुछ है, उसका जैसा भी विकास हुआ है, उसने जो कुछ प्राप्त किया है उसके लिए वह दूसरों का ऋणी है। इसलिए इनके प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह करके वह इन ऋणों से मुक्त हो सकता है, इसलिए यज्ञों की व्यवस्था की गयी है। ये यज्ञ हवन न केवल मानसिक बल्कि पर्यावरण की दृष्टि से भी सुख शान्ति के प्रतीक है। लोग गीतों में यज्ञ हवन के विधि–विधानों एवं उसमें शामिल आवश्यक वस्तुओं का विविवत् वर्णन मिलता है। राम और लक्ष्मण को अपना आदर्श मानकर चलने वाला समाज धार्मिक कृत्यों के सम्पादन में भी अग्रसी है। हवन के समय किन–किन वस्तुओं की महत्वपूर्ण भूमिका है तथा कैसे करना है इसका वर्णन लोकगीतों में है।

गंगा जी से बालू मंगवायेव त बेटिया बनापऊँ हो
आँखि ओटि कलसा धरायन त दीपक जलायेऊँ हो
अब से बेटी अइहैं सतनारायन बेटी हमरे अइहैं हो
अरे निहुरी–निहुरी पइयाँ लागित माँगन किछु मागित हो।।

भारतीय संस्कृति में मुख्य स्थान धर्म का भी है। भारतीयों का धर्म संकुचित धर्म नहीं है वरन् मानवतावादी धर्म है। यह धर्म सभी जीवों के कल्याण, क्षमा, और दया में विश्वास करता है। दया धर्म का वास्तविक लक्षण है, मानव कल्याण की पीठिका है जिस मानव के ह्रदय में प्राणिमात्र के लिए दया नहीं, उसका धार्मिक आचरण दिखावा मात्र है। इस कर्तव्य को बोध कराता हुआ लोक कवि वर्णन करता है –

जहि उर दया वसै, सोई नर नर है
गंगा नहाये से कातेक नर तरि गये
मेढ़क न तरे जहिके गंगा मा घर है
मूड के मुडाये से कातेक जन तरि गये
भेडी न तरै जो मुडाये सारा सर है।।

भारतीय संस्कृति में कर्म, पुनर्जन्म तथा प्रारब्ध के अनुसार सुख–दुख भोगने का विशेष महत्व है। यहाँ व्यक्ति के संसार के कर्मक्षेत्र पलायन करके सामाजिक दायित्वों की अनदेखी करके विरक्त होने का उपदेश नहीं दिया गया है। भारतीय संस्कृति में संसार में रहते हुए फल की इच्छा किये बिना दायित्वों को निभाने पर जो दिया गया है। यह सिद्धान्त व्यक्ति के नैतिक उत्तरदायित्व की भावना को विकसित करता है। उनके कर्तव्य का बोध कराता है। आज व्यक्ति के पास जो कुछ है, चाहे धनी है या निर्धन, सुखी है दुखी, उच्च पर पर आसीन है या निम्न पद पर सब कुछ उसके पूर्व जन्म का फल है। प्रारब्ध की ओर संकेत करता यह लोकगीत दुःख सहने की शिक्षा देता प्रतीत होता है –

जग में होन हार बलवान इसे कोई न मानइ झूठी
होन हार की बात केकई महलन या रूठी
राम गये बनवास, देह नृप दशरथ की छूटी
होनहार की बात याक दिन अरजुन पै बीती
वे अरजुन वै बान गोपिका मिल्लन ने लूटी।।

पुनर्जन्म का विचार व्यक्ति को सदाचार के लिए प्रेरित करता है और अनाचार तथा वामाचार का विरोध करता है कर्म और पुनर्जन्म का यह विचार भारतीयों के लिए प्रत्येक काल में प्रेरणा का प्रमुख स्रोत रहा है। इनकी भाववादी प्रेरणा ने भारतीय समाज को सदा ही प्रत्येक परिस्थिति में संभाला और संवारा है तथा विकास का अवसर प्रदान किया है। इसके भाग्यवादी पक्ष में लोकजीवन को संगठित रखने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। कर्म फल और पुनर्जन्म को सजीव करता हुए यह गीत, इस विचार के प्रति ग्रामीण जनजीवन के विश्वास की जड़ें और गहरी कर देता है।

खोलो पंडित पोथिया करम गति बाँचौ
पहिला जनम तोरा रनिया का होइ है
नाउनि कहारिन तोरा रनिया का होइ है
नाउनि कहारिन तोहरा पाँव परवरि हैं बेटी
दुसरा जलम तोरा अन्हरी का होइहै
दुनिया देखन के दुर्लभ होई जाई बेटी
तिसरा जनम तोहरा बंझिन का होइहै
केहु न भोर तोरा मुहाँ निहरिहैं बेटी

इस प्रकार कहा जा सकता है कि लोकगीत केवल वाचिक परम्परा कहकर भुला देने वाले छन्द नहीं हें इनकी परम्परा चिर पुरातन है और ये गीत अपने में सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय संस्कृति को समेटे हुए है। मानव जीवन के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का कोई ऐसा पक्ष नहीं है जो इनके अछूता रह गया हो। वेदों, शास्त्रों, उपनिषदों के सारे तव्वों को जन–जन की वाणी में जन–जन तक पहुँचाने का जो कार्य इस वाचिक परम्परा में किया है उसे भुलाया नहीं जा सकता। भाववेग में बहती हुई यह अमृतमयी रस धारा समाज में सतत् प्रावाहित है और रहेगी।

''लोकगीतों में हमारे जातीय उत्थान–पतन का इतिहास सन्निहित है। एक ओर पराधीनता और नैतिक ह्रास तथा दूसरी ओर सांस्कृतिक गौरव का असीम उल्लास, इन दोनों पक्षों का लोकगीतों में पर्याप्त, निरुपण करता मिलता है। हमारी परम्परायें, प्रथाएँ और अंधविश्वास आदि इन गीतों का वर्ण्य विषय है साथ ही आत्म बलिदान करके भी सम्मान को सुरक्षित रखने का दृढ़ संकल्प भी इन लोग गीतों में द्रष्टव्य है।''[7]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रो0 गोपी रमण प्रसाद सिंह, समाजशास्त्र के सिद्धान्त, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, संजय पैलेस आगरा, वर्ष 2013–2014 पृ0सं0–334
2. आचार्य जगदीश लाल शास्त्री, मनुस्मृति, मोतीलल बनारसीदास, प्रकाश नई दिल्ली, वर्ष 2010, पृ0सं0–35
3. डॉ0 महेश प्रताप नारायण अवस्थी, अवधी लोकगीत भाग दो, वसुमती प्रकाशन इलाहाबाद वर्ष 1985, पृ0सं0–54
4. डॉ0 महेश प्रताप नारायण अवस्थी, अवधी लोकगी भाग–दो, वसुमती प्रकाशन इलाहाबाद वर्ष 1985, पृ0सं0–137
5. डॉ0क विजय शंकर पाण्डेय, वैदिक सूक्त संग्रह, अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद पंचम संस्करण 2001, पृ0सं0–111
6. डॉ0 कमला सिंह, अवधी लोकरंग, हिन्दी साहित्स सम्मेलन प्रयाग इलाहाबाद, वर्ष 2000, पृ0सं0–19, 89
7. डॉ0 विरुघाबिन्द सिंह, अवधी लोकगीत विरासत, ज्ञान विज्ञान एजुकेश्र, दरियागंज, नई दिल्ली, वर्ष 2018, पृ0सं0–65